



भारत सरकार

भारत

का

विधि

आयोग

दूसरे धर्मों में संपरिवर्तन/पुनर्संपरिवर्तन – सबूत का तरीका

रिपोर्ट सं. 235

दिसम्बर, 2010

न्यायमूर्ति पी. वी. रेड्डी

(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का
उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष,
भारत का विधि आयोग

नई दिल्ली-110001

दूरभाष- 2301 9465 (निवास)

2338 4475 (कार्या.)

फैक्स- 2379 2475

अर्ध. शा.सं. 6(3)/185/2010-एल सी(एल एस) दिसम्बर 27, 2010

प्रिय माननीय डा. एम. वीरप्पा मोइली,

विषय:- दूसरे धर्म में संपरिवर्तन/पुनर्संपरिवर्तन – सबूत का तरीका

मैं उपरोक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 235वीं रिपोर्ट
अग्रेषित कर रहा हूँ।

केरल उच्च न्यायालय द्वारा निपटाए गए एक वैवाहिक अपील में,
यह प्रश्न था कि क्या ऐसी पत्नी जिसने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की
धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन
किया था, ने समाधानप्रद रूप से हिन्दू धर्म में संरिवर्तन के तथ्य को साबित
किया था। अन्य बातों के साथ-साथ कुटुम्ब न्यायालय ने अभिनिर्धारित
किया कि आवेदक-पत्नी जो जन्म द्वारा ईसाई थी, ने यह स्थापित नहीं
किया है कि वह स्वयं हिन्दू धर्म में संपरिवर्तित हो गई है और हिन्दू रीति-
रिवाज के अनुसार विवाह के विधिमान्य अनुष्ठान का कोई पर्याप्त सबूत
नहीं था।

कार्या: भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास रोड, नई दिल्ली-110001

निवास : 1 जनपथ, नई दिल्ली- 110 001

ई-मेल : pv_reddi@yahoo.co.in

उच्च न्यायालय ने उक्त निष्कर्षों को अपास्त किया और आवेदक को समुचित साक्ष्य पेश करने का और अवसर देने के पश्चात् विवाद्यक पर नए सिरे से विचार करने का निदेश दिया । निर्णय के पैरा 15 में व्यक्त मताभिव्यक्तियों को संलग्न रिपोर्ट के आरंभिक पैराग्राफ में उद्धृत किया गया है । निर्णय के पैराग्राफ 16 में रजिस्ट्रार को पैराग्राफ 15 की ओर आयोग का ध्यान आकृष्ट करने के लिए निर्णय की प्रति भारत के विधि आयोग को अग्रेषित करने का निदेश दिया गया ।

तदनुसार, भारत के विधि आयोग द्वारा विषय पर विचार किया गया । मेरे द्वारा पदभार ग्रहण करने पश्चात् अध्ययन का कार्य आरंभ किया गया और विधि आयोग ने प्रथमदृष्टया मत व्यक्त करते हुए, आम राय प्राप्त करने के लिए परामर्श पत्र परिचालित किया । कतिपय अभ्यावेदन प्राप्त हुए और रिपोर्ट के पैरा 15 में इनका उल्लेख किया गया है । आयोग ने सम्यक् विचार-विमर्श के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि किसी रजिस्टरकर्ता प्राधिकारी के समक्ष स्वयं घोषणा को संपरिवर्तन का सबूत नहीं माना जाना चाहिए और दूसरा संपरिवर्तन किए जाने के लिए समारोह और औपचारिकताओं या ऐसी रीति जिसमें संपरिवर्तन को न्यायालय में साबित किया जाए, के ब्यौरों को विधान द्वारा विहित करना बहुत अनुचित होगा । वहीं, आयोग ने यह महसूस किया कि उच्च न्यायालय के सुझाव को सीमित विस्तार तक स्वीकृत किया जाना चाहिए ताकि ऐसे लोगों को अवसर प्रदान किया जा सके जो संपरिवर्तन के अभिवाक् को सिद्ध करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य रखना चाहते हैं । आयोग ने यह स्पष्ट किया है कि घोषणा के फाइल किए जाने और इसके अंकन को संपरिवर्तन क अपरिहार्य सबूत नहीं बनाया जाना चाहिए । इसे केवल वैकल्पिक बनाया

जाना चाहिए ताकि संपरिवर्तित व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर संपरिवर्तन/पुनर्संपरिवर्तन को साबित करने के लिए दस्तावेजी सबूत पेश करने में समर्थ हो सके । आयोग ने यह भी स्पष्ट किया है कि दस्तावेजी सबूत को निश्चायक सबूत नहीं माना जाना चाहिए ताकि न्यायालय निश्चित ही इस प्रश्न पर विचार कर सके कि क्या संपरिवर्तन सही और स्वैच्छिक था । तदनुसार, रिपोर्ट के पैरा 16 और 17 में सिफारिशें की गई हैं । आयोग ने यह मत व्यक्त किया है कि ऐसी साधारण सिफारिश जिसका प्रवृत्त विधि से कोई विरोध नहीं है, को प्रभावी बनाने के लिए स्वीय विधियों में कानूनी संशोधनों की आवश्यकता नहीं है । केन्द्रीय सरकार संघ राज्य क्षेत्रों और राज्यों के संबद्ध प्राधिकारियों को समुचित अनुदेश जारी कर सकती है ।

सादर,

भवदीय,

ह/-

(पी. वी. रेड्डी)

डा. एम. वीरप्पा मोइली,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
नई दिल्ली-110001.

दूसरे धर्म में संपरिवर्तन/पुनर्संपरिवर्तन – सबूत का तरीका : वाला मामला

प्रस्तावना : केरल उच्च न्यायालय की मताभिव्यक्तियां

1. बेट्सी और सदानन्दन बनाम शून्य (2009 की मैट अपील संख्या 339) वाले एक वैवाहिक मामले में केरल उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन विवाह के विघटन के लिए पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए एक संयुक्त आवेदन पर विचार करते हुए इस मुद्दे की परीक्षा की कि प्राचीन हिन्दू विधि रूढ़ि और संपरिवर्तन को शासित करने वाले कानून के अधीन किसी विहित विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अभाव में न्यायालय का क्या दृष्टिकोण होना चाहिए और क्या किसी विधायी हस्तक्षेप की आवश्यकता है जिससे कि विधि को सहज और उपयोगी बनाया जा सके। उच्च न्यायालय ने विधान की आवश्यकता पर विचार करने के लिए पैरा 15 में व्यक्त विचारों के संदर्भ में विधि आयोग का ध्यान आकृष्ट किया है। न्यायमूर्ति आर. बंसत द्वारा निर्णय के पैरा 15 में यह मत व्यक्त किया गया है :-

“इस संदर्भ में हमें यह ध्यान देना चाहिए कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 2(1) के स्पष्टीकरण के खंड (ग) का अनुबंध यह दर्शित करता है कि हिन्दू धर्म में संपरिवर्तन या पुनर्संपरिवर्तन हो सकता है और ऐसे संपरिवर्तन को सुकर बनाने के लिए विधि के किसी अनुबंध या विनिर्दिष्ट मान्यताप्राप्त पद्धतियों का अभाव पक्षकारों को बहुत कठिनाईयां पैदा करता है। विधानमंडल के लिए ऐसे तरीके विहित करना असंभव नहीं होना चाहिए जिसके द्वारा कोई व्यक्ति किसी कठिनाई के बिना ऐसे संपरिवर्तन को प्रभावी

बना सके । ऐसे संपरिवर्तन को साबित करने के लिए व्यापक साक्ष्य पेश करने के लिए उसे न्यायालयों के समक्ष नहीं छोड़ देना चाहिए । ऐसी विधि जो संपरिवर्तन को मान्यता प्रदान करती है यह विहित करने की भी स्थिति में होनी चाहिए कि कैसे पक्षकार अनावश्यक और समय लगने वाले मुकदमों में फंसे बिना विश्व को ऐसे संपरिवर्तन के बारे में घोषणा कर सकते हैं । सभी धर्मों में संपरिवर्तन की बाबत इस पहलू पर विधि के समुचित अनुबंध आवश्यक प्रतीत होते हैं । किसी रजिस्टरकर्ता (कानूनी) प्राधिकारी (जिसे घोषणाकर्ता को शान्त भाव से समझने और घोषणा की पुष्टि करने का पर्याप्त समय देना चाहिए) के समक्ष परमपावन घोषणा का शपथपत्र फाइल करने हेतु सभी धर्मों के लिए लागू सामान्य कानूनी उपबंध और नियत अवधि की समाप्ति के पश्चात् और किसी संहिताबद्ध पक्षकार से किसी प्रकार के आक्षेप की मांग करने और सुनवाई करने के पश्चात् उस प्रयोजन के लिए कानून के अधीन अनुरक्षित रजिस्टर में प्राधिकारी द्वारा घोषणा और ऐसी पुनर्पुष्टि की स्वीकृति तथा अंकन प्रक्रिया को सहज, सुप्रयोज्य और कम जटिल बनाएगा । ऐसा अनुबंध इसमें याची जैसे कई नागरिकों को समय लगने वाले और अनावश्यक विधिक कार्यवाहियों और मुकदमों में फंसने की थकाऊ बाध्यता से बचाएगा । धार्मिक संपरिवर्तन भारतीय मानसिकता वाले अनेक लोगों को अनावश्यक, बचकाना और दोनों धर्मों और ऐसे धर्मों के अनुयायियों के प्रति भी सम्मान की उस अवधारणा का खंडन कर सकता है । किन्तु निश्चित ही, संविधान के अधीन प्रत्याभूत

आस्था की स्वतंत्रता, संपरिवर्तन जहां आवश्यक है, द्वारा अपनी पसंद की आस्था चुनने के अधिकार के खंडन को न्यायोचित नहीं ठहरा सकती है ।”

उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि संविवाद की दशा में किसी व्यक्ति के धर्म की आसान पहचान करना विनिश्चित मामलों की सहायता से भी संभव प्रतीत नहीं होता है । न्यायपीठ ने तब पैरा 13 में इस प्रकार मत व्यक्त किया :-

“ किन्तु न्यायालय अपने हाथ खड़े नहीं कर सकते । इस प्रश्न के संविवाद या नैतिक या वस्तुनिष्ठ संदेह (चाहे पक्षकार कोई संविवाद न उठाएं) की दशा में उन्हें यह सुलझाना होगा कि क्या इस मामले में हिन्दू धर्म में संपरिवर्तन या पुनर्संपरिवर्तन था जैसा वादकारी द्वारा निश्चयपूर्वक कहा गया है । हमें यह दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान उपलब्ध साक्ष्य और अतिरिक्त साक्ष्य जो पेश किए जाएं, के आधार पर उपरोक्त मार्गदर्शक सिद्धांतों की सहायता से निचले न्यायालय के लिए यह विनिश्चित करना संभव हो जाएगा कि क्या प्रथम अपीलार्थी हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 2(1) के स्पष्टीकरण (ग) के अधीन संपरिवर्तन द्वारा हिन्दू हो गया है । हम व्यापक रूप से यह उपदर्शित कर सकते हैं कि प्रथम अपीलार्थी का प्राख्यान कि अपने विवाह के पूर्व उसने हिन्दू धर्म अपना लिया था, को सम्यक् महत्व देना होगा । वह प्राख्यान को स्पष्ट कर सकती है और न्यायालय को संतुष्ट कर सकती है कि उपरोक्त उपदर्शित कसौटियों को उसके द्वारा हिन्दू धर्म स्वीकार करते समय पूरा

किया गया है । वह हिन्दू धार्मिक रीति-रिवाजों के अनुसार दूसरे अपीलार्थी के साथ अनुष्ठापित अपने विवाह के कार्य को साबित कर सकती है । निश्चित ही वह न्यायालय के समक्ष यह साबित कर सकती है कि वह ऐसे संपरिवर्तन के पश्चात् हिन्दू देवताओं की पूजा कर रही है । वह यह दर्शाने के लिए भी साक्ष्य पेश कर सकती है कि ऐसे संपरिवर्तन के पश्चात् उसने दुनिया को विश्वास दिला दिया है कि वह एक हिन्दू है । ये सभी परिस्थितियां यदि सिद्ध हो जाती है तो हम ऐसा कोई कारण नहीं पाते कि अपीलार्थी के असंविवादित प्राख्यान कि प्रथम अपीलार्थी विवाह के पूर्व संपरिवर्तन द्वारा हिन्दू हो गया था, को स्वीकार क्यों नहीं किया जा सकता और हिन्दू रिवाजों के अनुसार किए गए विवाह को निचले न्यायालय द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विधिमान्य रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता ।”

पूर्वोक्त मताभिव्यक्तियों के साथ उच्च न्यायालय ने मामला निचले न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया और पक्षकारों को और साक्ष्य पेश करने और अपने अभिवचनों, यदि आवश्यक हो, को संशोधित करने की भी अनुज्ञा दी ।

2. भारत के विधि आयोग ने इस सीमित प्रश्न पर विचार करने के लिए कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार संपरिवर्तन के सबूत के विशिष्ट ढंग को कानूनी जामा पहनाया जाना चाहिए, प्रारंभिक अध्ययन करने और अपना प्रथमदृष्टया मत व्यक्त करते हुए उक्त मुद्दे पर आम जनता के विचार आमंत्रित किए । कतिपय सुझाव प्राप्त हुए हैं

जिनका उल्लेख समुचित समय पर किया जाएगा ।

अपने विकल्प के धर्म को मानने और आचरण करने की स्वतंत्रता

3. अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता संविधान के अनुच्छेद 25 में अनुष्ठापित है । सभी धर्मों की समानता को अभिव्यक्तः अनुच्छेद 25 में मान्यता प्रदान की गई है जिसके द्वारा पंथ निरपेक्षता के महत्वपूर्ण आदर्श पर बल दिया गया है । “आचरण” पद का संबंध मुख्यतः धार्मिक पूजा, रिवाज और रस्मों से है । धर्म का प्रचार करने का अभिप्राय उस धर्म के सिद्धांतों को प्रतिपादित करके दूसरे लोगों को धार्मिक विश्वास को संसूचित करने के अधिकार से है । वास्तव में, प्रचार करने के नाम से, किसी भी व्यक्ति को दबाव या प्रलोभन के अधीन दूसरे धर्म में सपरिवर्तित करने का अधिकार नहीं है (माननीय स्टैन्सलास बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 908 द्वारा) । धार्मिक आचरण उतना ही धर्म का महत्वपूर्ण भाग है जितना धार्मिक आस्था या सिद्धांत (कमिशनर, हिन्दू रिलीजस इन्डामेन्ट, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामी आफ शिरूर मठ, ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 282 द्वारा) । अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता का मूल अधिकार लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के विचार के अधीन है । अनुच्छेद 25 का खंड (2) ऐसी किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन करने हेतु विधि बनाने के लिए राज्य की शक्ति का संरक्षण करता है जो धार्मिक आचरण से सहयुक्त हो । अनुच्छेद 26 धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता के सहवर्ती अधिकार को प्रभावी बनाता

है और पुनः यह अधिकार लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन है । निःसंदेह, अनुच्छेद 25 और 26 धार्मिक कृत्यों तक विस्तारित है और सिद्धांतों तक की सीमित नहीं है । यह सुस्थिर है कि अंतःकरण की स्वतंत्रता और किसी धर्म को मानने के अधिकार का आशय धर्म को परिवर्तित करने की स्वतंत्रता भी है । यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का अनुच्छेद 18 विनिर्दिष्ट रूप से यह अधिकथित करता है कि अंतःकरण और धर्म की स्वतंत्रता के अंतर्गत धर्म या आस्था के परिवर्तन की स्वतंत्रता भी है । इसी प्रकार, अंतःकरण की स्वतंत्रता के अधिकार से किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छया एक धर्म को त्यागने और दूसरे धर्म को अपनाने का व्यक्तिगत अधिकार विवक्षित है ।

4. एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन प्राथमिकतः किसी व्यक्ति की दृढ़ धारणा या विश्वास का परिचायक है कि ऐसा धर्म जिसमें वह पैदा हुआ था, उसकी आध्यात्मिक या तार्किक प्रत्याशाओं के अनुरूप नहीं है । संपरिवर्तन उस विश्वास का भी परिणाम हो सकता है कि दूसरा धर्म जिसे वह अपनाना चाहता है, उसके आध्यात्मिक कल्याण की बेहतर देखभाल करेगा या अन्यथा उसकी विधिसम्मत आकांक्षाओं को पूरा करेगा । कभी-कभी एक धर्म से दूसरे धर्म में संपरिवर्तन के लिए कोई तार्किक कारण ढूंढ पाना कठिन हो सकता है । संपरिवर्तन के लिए कारण या औचित्य का विनिर्धारण तार्किकता या युक्तियुक्तता के मानक पर नहीं किया जा सकता है ।

5. संपरिवर्तन से संबंधित किसी प्रकार की चर्चा धर्म और धार्मिक आस्था पर विचार का सृजन करती है । धर्म की कोई संक्षिप्त परिभाषा नहीं है ।

यह कहा गया है कि “धर्म” ईश्वर में आस्था और विश्वास का विषय है और यह आवश्यक नहीं कि यह धर्म गठित करता हो । शिखर मठ (ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 282) वाले मामले में न्यायमूर्ति मुखर्जी ने धर्म और विशेषकर हिन्दू धर्म के संबंध में निम्नलिखित उचित विचार व्यक्त किए :-

“ धर्म निश्चित ही व्यक्तियों या समुदायों की आस्था का विषय है और आवश्यक नहीं यह ईश्वरवादी हो । बौद्ध और जैन धर्म जैसे भारत में ऐसे सुविख्यात धर्म हैं जो ईश्वर या किसी बौद्धिक सत्ता पर विश्वास नहीं करते । निस्संदेह, धर्म ऐसी आस्था या सिद्धांत की प्रणाली पर आधारित होता है जो उन व्यक्तियों द्वारा अपनाया जाता है जो उस धर्म को अपने आध्यात्मिक कल्याण के अनुकूल मानते हैं, किन्तु यह कहना सही नहीं होगा कि धर्म और कुछ नहीं बल्कि एक मत-सिद्धांत या आस्था है । कोई धर्म अपने अनुयायियों को अपनाने के लिए न केवल आचार-संहिता अधिकथित कर सकता है बल्कि यह रीति और रिवाज, उपासना का अनुष्ठान और ढंग भी विहित कर सकता है जिसे धर्म का अभिन्न भाग माना जाता है और इन तरीकों और रिवाजों का विस्तार, भोजन और पोशाक के विषय तक भी हो सकता है । (पैरा 18)

महान दार्शनिक और विचारक स्वामी विवेकानन्द ने कहा :-

“ धर्म सामान्यतया क्योंकि संपूर्ण विश्व में सिखाया जाता है इसलिए इसे आस्था और विश्वास पर आधारित कहा जाता है और अधिकांश मामलों में यह केवल विभिन्न सिद्धांतों के समूहों से मिलकर बना

है और यही कारण है कि हम यह पाते हैं कि सभी धर्म एक-दूसरे धर्म से झगड़ते रहते हैं । पुनः ये सिद्धांत आस्था और विश्वास पर आधारित हैं।”

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति और सम्प्रति पिछड़े वर्ग के राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष श्री एम. एन. राव ने “धर्म की स्वतंत्रता और संपरिवर्तन का अधिकार” विषय पर अपने लेख में पूर्वोक्त विचारों को निर्दिष्ट करते हुए निम्नलिखित उपयुक्त विचार व्यक्त किया है :-

“ संपरिवर्तन का अधिकार किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छया एक धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म को अपनाने के व्यक्तिगत अधिकार का संकेत करता है । एक धर्म से दूसरे धर्म में इस तरह का परिवर्तन निश्चित ही उस व्यक्ति की इस विचारधारा का परिणाम होना चाहिए कि यह उस धर्म जिसमें वह पैदा हुआ था, उसकी आध्यात्मिक या तार्किक प्रत्याशाओं के अनुरूप नहीं रहा है । कभी-कभी यह धर्म के सिद्धांतों और आचरणों में कठोरता के कारण अपने निजी धर्म में आस्था खोने के परिणामस्वरूप भी हो सकता है। कभी-कभी व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व की सभी अवधारणाओं में पूरी आस्था खो देता है और निरीश्वरवादी हो जाता है । उपरोक्त किन्हीं कारणों के परिणामस्वरूप धर्म का परिवर्तन “संपरिवर्तन के अधिकार” की परिधि के भीतर आता है ।”

संपरिवर्तन की प्रकृति और साबित किए जाने वाले आवश्यक लक्षण

6. विवाह की तरह संपरिवर्तन एक पवित्र कार्य है । एक धर्म से दूसरे

धर्म में संपरिवर्तन का सामाजिक और विधिक दूरगामी परिणाम है। यह उत्तराधिकार, वैवाहिक प्रास्थिति और निर्वाचित पद प्राप्त करने के अधिकार को भी प्रभावित करता है। विवाह-विच्छेद इस आधार पर मंजूर किया जा सकता है कि पति या पत्नी ने धर्म परिवर्तन कर लिया है (हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(ii) द्वारा)। किसी व्यक्ति द्वारा संपरिवर्तन करने पर वह भिन्न स्वीय विधि द्वारा शासित हो सकता है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित संसदीय क्षेत्र से निर्वाचन में खड़े होने का अधिकार समाप्त हो सकता है यदि ऐसा व्यक्ति जिसने धर्म परिवर्तन किया है, अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य नहीं रह जाता है। इस प्रकार, संपरिवर्तन की परिस्थिति का किसी संपरिवर्तित व्यक्ति के अधिकारों और निर्योग्यताओं की दृष्टि से काफी महत्व है।

7. संपरिवर्तन को एक घटना नहीं माना जा सकता जिसे मात्र मौखिक या लिखित घोषणा के माध्यम से प्राप्त किया जा सके। वहीं, उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि के अनुसार किसी विशिष्ट औपचारिकता या उत्सव की अपेक्षा नहीं है। वस्तुतः, किसी धार्मिक ग्रन्थ या उपदेशों में विनिर्दिष्ट रूप से ऐसा कोई धर्म अनुष्ठान विहित नहीं है, यद्यपि 'शुद्धि' (आर्य समाजियों के मामले में) और बपतिस्मा (ईसाईयों के मामले में) जैसे कतिपय धर्म अनुष्ठान कुछ मामलों में व्यवहार में प्रचलित हैं। संपरिवर्तन करने के आशय का विश्वसनीय साक्ष्य और इसके पश्चात् उस आशय को प्रभावी बनाने के लिए निश्चित प्रकट कार्य आवश्यक है। संपरिवर्तित व्यक्ति का पश्चात्पूर्ती आचरण भी इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए महत्वपूर्ण है कि सही अर्थों में संपरिवर्तन हो गया है और यह असली

संपरिवर्तन था । उच्चतम न्यायालय द्वारा बार-बार यह मत व्यक्त करते समय कि ऐसे साक्ष्यिक तथ्य जो संपरिवर्तन साबित कर सकते हों, के बारे में यह कहा गया है कि किसी विशिष्ट रिवाज या धर्म अनुष्ठान की अपेक्षा नहीं है । न्यायालयों द्वारा हमेशा इस बात पर बल दिया गया है कि संपरिवर्तन का संतोषजनक साक्ष्य विशेषकर तब आवश्यक है जब हम बाह्य कारणों से या असम्यक् दबाव के परिणामस्वरूप छलयोजित संपरिवर्तनों की बहुतायत शिकायतें सुनते हैं ।

महत्वपूर्ण प्रश्न पर आयोग का मत और सुसंगत निर्णयज विधि

8. आयोग के मतानुसार, संपरिवर्तन साबित करने के लिए कानूनी प्रक्रिया आदेश या अपेक्षित सबूत की प्रकृति न तो वांछनीय है और न ही व्यवहार्य । प्रसामान्यतः, कोई कानून ऐसे व्यौरों के बारे में नहीं होता है जो साक्ष्य के मूल्यांकन की परिधि के भीतर आते हैं । पेश किए जाने वाले साक्ष्य की गुणता से संबंधित ऐसा कोई अपवर्जन अधिक जटिलता ही पैदा करेगा । उच्च न्यायालय द्वारा घोषणा की प्रकृति का दिया गया सुझाव संपरिवर्तन का निष्कर्ष निकालने के लिए विनिश्चित मामलों में अधिकथित कसौटियां का स्थान नहीं ले सकता । वस्तुतः, यह प्रतीत नहीं होता कि उच्च न्यायालय यह कहना चाहता है कि घोषणा के पश्चात् पुष्टिकरण को संपरिवर्तन/पुनर्संपरिवर्तन का निश्चायक साक्ष्य माना जाना चाहिए । उच्च न्यायालय का स्पष्टतः यह आशय है कि घोषणा के पश्चात् रजिस्टरकर्ता प्राधिकारी के समक्ष पश्चात्पूर्ति पुष्टिकरण महत्वपूर्ण दस्तावेजी साक्ष्य का प्रयोजन पूरा करेगा और तद्वारा संविवाद की गुंजाइश को बहुत कम करेगा । दूसरा दृष्टिकोण भी है जिसकी नजर से उच्च न्यायालय के उक्त

विचार को देखा जाना चाहिए । यदि घोषणा और उसके रजिस्ट्रीकरण को सबूत का एकमात्र तरीका बनाया जाता है तो कई सद्भाविक संपरिवर्तित व्यक्ति रजिस्ट्रीकरण की प्रक्रिया का पालन करने की मात्र असफलता के कारण संपरिवर्तन साबित करने में अक्षम हो जाएंगे । तथापि, यह प्रश्न उठ सकता है कि ऐसी प्रक्रिया किस प्रयोजन को पूरा करेगी, जहां कुछ वर्गों से आपत्तियां उठेगी चाहे वे सद्भावपूर्ण हों या दुर्भावपूर्ण ? क्या उन आक्षेपों पर विचार करने और निष्कर्ष अभिलिखित करने का कार्य रजिस्टरकर्ता अधिकारी पर छोड़ दिया जाना चाहिए ? क्या उस आरंभिक प्रक्रम पर विद्यमान तथ्यों के आधार पर रजिस्टरकर्ता अधिकारी द्वारा संपरिवर्तन की सद्भाविकता पर विनिश्चय करना उचित है? इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं मिलेगा यदि घोषणा और पुष्टिकरण को संपरिवर्तन का निश्चायक सबूत माना जाएगा ।

9. उच्च न्यायालय का यह मत उत्कर्ष हीन नहीं है कि संपरिवर्तन की बाबत सबूत को सरल बनाया जाना चाहिए और दस्तावेजी साक्ष्य को उन व्यक्तियों को उपलब्ध कराया जाए जिनसे संपरिवर्तन के तथ्य को साबित करने के लिए कहा जाए । यह दीर्घ मुकदमेबाजी और अनावश्यक संविवादों से बचने की चिन्ता से उत्पन्न होता है । किन्तु, मुद्दे को सामाजिक-आर्थिक दशा, क्रियान्वयन की व्यावहारिक कठिनाई और अप्रामाणिक दावे जो प्रायः किए जाते हैं, को दृष्टिगत करते हुए व्यापक परिप्रेक्ष्य से देखा जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय समेत सभी न्यायालयों ने निरंतर यह अभिनिर्धारित किया है कि विधि संपरिवर्तन के लिए किसी विशिष्ट धर्म-अनुष्ठान या रिवाज की अपेक्षा नहीं करती, किन्तु संपरिवर्तित व्यक्ति द्वारा

दूसरे धार्मिक आस्था में उस आशय के व्यक्ततः असंदिग्ध आचरण के साथ सद्भाविक आशय आवश्यक है। इस पहलू पर न्यायालय का निश्चित ही समाधान होना चाहिए और किसी विहित प्राधिकारी के समक्ष संपरिवर्तन की घोषणा फाइल करना एक महत्वपूर्ण पहलू है जो न्यायालय को ऐसे समाधान पर पहुंचने में सहायता पहुंचाता है किन्तु वह एकमात्र मानदंड नहीं होना चाहिए।

10. उच्चतम न्यायालय के निर्णयों समेत अनेक विनिश्चित मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संपरिवर्तन या पुर्नसंपरिवर्तन करने के लिए किसी विशिष्ट औपचारिकता या धार्मिक रिवाज या धर्म अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। पंजाब राव बनाम डा. डी. सी. मेशाराम और अन्य (ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1179) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि हिन्दू हरिजनों द्वारा बौद्ध धर्म में संपरिवर्तन के लिए हुए समारोह के अवसर पर भिक्षु का होना और किसी विशिष्ट रिवाज का अनुपालन आवश्यक नहीं है; इस प्रकार संपरिवर्तन के लिए किसी रजिस्टर में संपरिवर्तित व्यक्ति का हस्ताक्षर भी बाध्यकर नहीं है। पेरुमल नाडार (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा बनाम पोन्नूस्वामी नडार (अवयस्क) (ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2352) वाले मामले में, इस सिद्धांत को दोहराया गया कि शुद्धिकरण या प्रायश्चित करने का कोई औपचारिक उत्सव संपरिवर्तन करने के लिए आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार एस. अनवालगन बनाम बी. देवाराजन और अन्य (ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 411) वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने संपरिवर्तन या पुर्नसंपरिवर्तन पर जातीय स्थिति के संबंध में विधिक स्थिति की परीक्षा की

और यह अभिनिर्धारित किया कि हिन्दू धर्म में पुनर्संपरिवर्तन के लिए कोई विशिष्ट धर्म अनुष्ठान विहित नहीं है। कर्नाटक उच्च न्यायालय ने सुजाता बनाम जोस आगस्टाइन (II) (1994) डाइवोर्स एंड मैट्रीमोनियल केसेज 442) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि ईसाई होने के लिए, किसी भी व्यक्ति को सही अर्थ में ईसाई आस्था मानना अनिवार्य है और यह तथ्य कि किसी व्यक्ति ने वपतिस्मा का अनुष्ठान कर लिया है, यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है कि वह ईसाई हो गया है या हो गई है। किसी भी व्यक्ति द्वारा ईसाई धर्म अपनाने की बात स्थापित करने के लिए यह मूल बात साबित करनी चाहिए कि संबंधित व्यक्ति सही अर्थ में ईसाई आस्था में विश्वास करता है और इसे मानता है।

10.1 इस प्रकार, पेरुमल नाडार बनाम पोन्नूस्वामी (पूर्वोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा संपरिवर्तन की कसौटी को इस प्रकार व्यक्त किया गया है : -

“ कोई व्यक्ति जन्म या संपरिवर्तन द्वारा हिन्दू हो सकता है। दूसरी आस्था में जन्मे किसी व्यक्ति द्वारा मात्र हिन्दू आस्था में सैद्धांतिक निष्ठा उसे हिन्दू धर्म में संपरिवर्तित नहीं करता और न ही मात्र यह घोषणा कि वह एक हिन्दू है, हिन्दू धर्म में उसके द्वारा संपरिवर्तन करने के लिए पर्याप्त है। किन्तु हिन्दू आस्था में संपरिवर्तित करने के सद्भाविक आशय के साथ उस आशय का सुस्पष्टतः व्यक्त करने का आचरण संपरिवर्तन का पर्याप्त साक्ष्य हो सकता है। संपरिवर्तन सम्पन्न करने के लिए शुद्धिकरण या प्रायश्चित्त का कोई औपचारिक अनुष्ठान आवश्यक नहीं है।” (पैरा 6)

उच्चतम न्यायालय ने यह भी व्यक्त किया “हमारे निर्णय में निचले न्यायालयों के इस निष्कर्ष कि अन्नापाझम ने पेरुमल से अपने विवाह के पूर्व हिन्दू धर्म में संपरिवर्तन कर लिया था, का साक्ष्य द्वारा पर्याप्त समर्थन है।”

10.2 कैलाश सोनकर बनाम श्रीमती माया देवी (ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 600) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने पुर्नसंपरिवर्तन के मामले पर विचार करते हुए इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया जैसा निम्नलिखित अभिव्यक्तियों से देखा जा सकता है :-

“हमारी राय में, मुख्य कसौटी पुर्नसंपरिवर्तित व्यक्ति की अपने नए धर्म से दूर रहने और इससे पूरी तरह से असहबद्ध रहने का असली आशय होना चाहिए। शीघ्र ही हमें यहां यह कहना चाहिए कि इसका यह अर्थ नहीं है कि पुर्नसंपरिवर्तन केवल चाल या धोखा या सांसारिक फायदों को पाने का आवरण होना चाहिए जिससे कि पुर्नसंपरिवर्तन किसी विशिष्ट प्रयोजन को प्राप्त करने का दिखावा मात्र रह जाए जबकि वास्तविक आशय रहस्य से ढक जाए। पुर्नसंपरिवर्तित व्यक्ति को अपने पुराने धर्म पर वापस जाने और अपनी पूर्व जाति के सदस्यों से किसी विरोध के बिना उक्त धर्म की रीति और रिवाजों को स्वीकार करने का स्पष्ट और यथार्थ आशय प्रदर्शित करना चाहिए। “ (पैरा 30)

आगे यह स्पष्ट किया गया :-

“इस पहलू को समझने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि पूर्व

जाति के समुदाय के मतों के अभिव्यक्तिकरण का प्रत्यक्ष या निश्चायक सबूत होना चाहिए और यह इस शर्त का पर्याप्त अनुपालन होगा यदि उस समुदाय जिसमें व्यक्ति पुनर्संपरिवर्तन पर अपना पुराना धर्म पुनरुज्जीवित कर लेगा के सदस्यों द्वारा कोई अपवाद या विरोध दर्ज नहीं किया जाता है ।” (पैरा 30)

10.3 हम सपना जैकब, अवयस्क बनाम केरल राज्य और अन्य (ए. आई. आर. 1993 केरल 75) वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय के विनिश्चय को भी निर्दिष्ट कर सकते हैं जिसमें (तत्कालीन) न्यायमूर्ति के. जी. बालाकृष्णन ने विभिन्न नजीरों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया :-

“यह साबित करने के लिए कि याची हिन्दू समुदाय का सदस्य था, उसे यह स्थापित करना चाहिए कि हिन्दू आस्था में संपरिवर्तित होने की सद्भाविक आस्था के साथ उस आशय को स्पष्टतः व्यक्त करने का आचरण भी था । यह सही है कि संपरिवर्तन संपन्न करने के लिए शुद्धिकरण या प्रायश्चित का कोई औपचारिक अनुष्ठान आवश्यक नहीं है । याची स्वीकार्यतः जैकोबाइट ईसाई की पुत्री है । इस प्रकार जन्म से वह एक ईसाई है । कोई संपरिवर्तित व्यक्ति हिन्दू धर्म अपना सकता है और उस धर्म की सांस्कृतिक प्रणाली और परम्परा का पालन कर सकता है और उसे हिन्दू धर्म के जीवन के तरीके भी अपना लेने चाहिए । यह सही है कि न्यायालय धार्मिक विश्वास की सच्चाई का परीक्षण नहीं कर सकता या माप नहीं सकता ; या जहां किसी निश्चित धर्म

में किसी व्यक्ति के विश्वास की यथार्थता का कोई प्रश्न नहीं है वहां न्यायालय इसकी गहराई माप नहीं सकता या यह अवधारित नहीं कर सकता कि क्या यह एक बौद्धिक दृढ़ धारणा है या अज्ञान और कृत्रिम कल्पना है । किन्तु कोई न्यायालय किसी व्यक्ति के उनके कार्यों के पीछे छिपे सही आशय का पता लगा सकता है और निश्चित ही मामले की परिस्थितियों से यह पता लगा सकता है कि क्या मिथ्या संपरिवर्तन वस्तुतः किसी अन्य प्रयोजन को पूरा करने के लिए किया गया था । इस मामले में, याची की माता ने वी. एम. जैकब से विवाह करने के पश्चात् अपना नाम उमा जैकब रख लिया । याची का नाम स्वीकार्यतः सपना जैकब, एक ईसाई नाम है । यह साबित करने के लिए साक्ष्य में कोई बात नहीं है कि याची ने कभी हिन्दू जीवन जिया था । याची एक ही आधार पर अनुसूचित जाति के फायदे का दावा कर रहा है कि उसकी माता अनुसूचित जाति की है ।” (पैरा 6)

10.4 इसी प्रकार, रखैया बीबी बनाम अनिल कुमार, आई. एल. आर. (1948) कलकत्ता 119 वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है कि क्या संपरिवर्तन सद्भावपूर्वक किया गया था या मात्र बहाना था ।

10.5 एम. चन्द्र बनाम एम. थंगामुथु और एक अन्य (2010) 9 एस. सी. सी. 712 वाले हाल ही के एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने पैरा 42 में यह मत व्यक्त किया “विधि का यह स्थिर सिद्धांत है कि एक धर्म से दूसरे धर्म में संपरिवर्तन को साबित करने के लिए दो तत्वों का पूरा होना

आवश्यक है । पहला, संपरिवर्तन होना चाहिए और दूसरा, उस समुदाय में स्वीकृति जिसमें व्यक्ति संपरिवर्तित हुआ है ।”

10.6 पंजाब राव बनाम डा. डी. पी. मेशराम (पूर्वोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने संविधान (अनुसूचित जाति) आदेश, 1950 के खंड 3 में “मानने” पद का निर्वचन किया । उक्त उपबंध यह अनुध्यात करता है कि कोई व्यक्ति तभी अनुसूचित जाति का सदस्य माना जाएगा यदि वह हिन्दू या सिख धर्म मानता हो । उस मामले में, प्रथम प्रत्यर्थी के विधान सभा के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया है और अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं रह गया है । निर्वाचन अधिकरण ने अपीलार्थी की दलील को कायम रखा और निर्वाचन को अपास्त कर दिया । तथापि, उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा बौद्ध धर्म में संपरिवर्तन को सिद्ध नहीं किया गया इसलिए उसके निर्वाचन को कायम रखा । उच्चतम न्यायालय ने अपील मंजूर की और यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्वाचन अधिकरण के आदेश को पुनःस्थापित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी अपने नामनिर्देशन के समय हिन्दू नहीं रह गया था और परिणामतः अनुसूचित जाति के सदस्यों के लिए आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी होने का अपात्र हो गया था । उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि धर्म को मानने का क्या अर्थ है । उच्चतम न्यायालय ने “मानने” शब्द के शब्दकोश अर्थ को निर्दिष्ट करते हुए यह मत व्यक्त किया, “हमें यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति के विश्वास” की घोषणा करने का अर्थ, ईसाई धर्म मानने के संदर्भ में यह है कि पूर्वोक्त आदेश का अर्थान्वयन

करते समय हमें यह बात मस्तिष्क में रखना चाहिए क्योंकि यही वह मूल बात है जो धार्मिक विश्वास को अपनाता है और परिणामतः, ऐसी ही स्थिति धार्मिक विश्वास के परिवर्तन की दशा में भी होती है। इस प्रकार यह परिणाम निकलता है कि किसी व्यक्ति के विश्वास की घोषणा का अभिप्राय निश्चित ही इस तरह से घोषणा करना है जिससे कि यह उन व्यक्तियों को पता चले जिनसे यह हितबद्ध हो। इसलिए, यदि किसी व्यक्ति द्वारा ऐसी सार्वजनिक घोषणा की जाती है कि वह अब अपने पुराने धर्म का सदस्य नहीं रह गया है और दूसरा धर्म स्वीकार कर लिया है तो यह माना जाएगा कि वह दूसरा धर्म अपनाने लगा है। ऐसी खुली घोषणा के संदर्भ में आगे यह जांच करना निश्चयक होगा कि क्या दूसरे धर्म में संपरिवर्तन प्रभावी हो गया है।” (पैरा 13)

उस दशा में, यह तर्क नामंजूर किया गया कि किसी भिक्षु ने समारोह नहीं कराया और प्रत्यर्थी सं. 1 का नाम बौद्ध धर्म के संपरिवर्तन के रजिस्टर में नहीं पाया गया इसलिए, संपरिवर्तन का कोई समाधानप्रद सबूत नहीं था। विनिश्चय यह प्रदर्शित करता है कि अपने पुराने धर्म को आम जनता में त्यागने और दूसरा धर्म अपनाने की घोषणा दूसरे धर्म में संपरिवर्तन के तथ्य को सिद्ध करने का महत्वपूर्ण कदम है। पेरुमल वाले मामले में यथा अधिकथित दूसरा समानतः महत्वपूर्ण कदम अपने पश्चात्पूर्ती आचरण द्वारा प्रदर्शित संपरिवर्तित होने का सद्भाविक आशय है। पंजाब राव वाले मामले में उच्चतम न्यायालय को राष्ट्रपतीय आदेश के “मानने” पद के अभिप्राय पर विचार करना था।

11. यद्यपि संपरिवर्तन के प्रयोजन के लिए किसी विशिष्ट औपचारिकता

या धर्मानुष्ठान करने की अपेक्षा नहीं है फिर भी इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि संपरिवर्तन यथार्थ संपरिवर्तन है, संपरिवर्तित व्यक्ति द्वारा संपरिवर्तन के आशय और पश्चात्पूर्ति आचरण का विश्वसनीय साक्ष्य आवश्यक है। धर्मान्तरित व्यक्ति को हिन्दू (या दूसरा अन्य धर्म) अपनाना चाहिए तथा सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परम्पराओं का पालन करना चाहिए और उस धर्म की जीवन शैली ग्रहण कर लेनी चाहिए।

12. यह उल्लेखनीय है कि गुजरात, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, आदि जैसे कुछ राज्यों में धर्म की स्वतंत्रता अधिनियम अधिनियमित किए गए थे। उसके उपबंध बलात् संपरिवर्तन अर्थात् बल के प्रयोग, प्रलोभन या कपटपूर्ण साधनों द्वारा संपरिवर्तन का प्रतिषेध करते हैं और ऐसे व्यक्ति से जो एक धार्मिक आस्था से दूसरी धार्मिक आस्था में संपरिवर्तन के धर्मानुष्ठान में सहभागी होता है या भाग लेता है, पहले से या संपरिवर्तन की घटना के पश्चात् नियत अवधि के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को सूचना देने की अपेक्षा करते हैं। ऐसा न करना एक अपराध है। कुछ अधिनियमिति ऐसा व्यक्ति जो धर्मांतरित हुआ है पर विहित प्ररूप में विहित अवधि के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को नोटिस भेजने का कर्तव्य सौंपता है और यदि वह पर्याप्त हेतुक के बिना इस अपेक्षा को पूरा करने में असफल रहता है तो वह भी दंडनीय है। इस प्रकार, कुछ राज्यों में सूचना और घोषणा का फाइल किया जाना विधि द्वारा प्रवर्तनीय कानूनी बाध्यता है। तथापि, जहां ऐसा विधान नहीं है आयोग यह महसूस करता है कि घोषणा का फाइल किया जाना और रजिस्ट्रीकरण संपरिवर्तन के सबूत का बाध्यकर या अनिवार्य तरीका नहीं बनाया जाना चाहिए। न ही संसद के लिए हिन्दू

विवाह अधिनियम और अन्य विधियों में ऐसा उपबंध शामिल करना आवश्यक या वांछनीय है। हमें यहां बलात या उत्प्रेरित संपरिवर्तनों और उससे संबद्ध उपचारात्मक कार्रवाई के मुद्दे पर विचार नहीं करना है। हम संपरिवर्तन, जब कोई विवाद उठता है, के तथ्य को सिद्ध करने के लिए अपेक्षित साक्ष्यिक सबूत के सीमित प्रश्न पर ही परीक्षा कर रहे हैं।

13. इस दृष्टि से देखते हुए, आयोग का यह मत है कि उच्च न्यायालय का सुझाव इस सीमित विस्तार तक स्वीकार किए जाने योग्य है ताकि उन संपरिवर्तित व्यक्तियों को अवसर प्राप्त हो सके जो कभी मांगे जाने पर संपरिवर्तन के अभिवचन को सिद्ध करने के लिए घोषणा के दस्तावेजी साक्ष्य पेश कर सकें। वहीं, घोषणा के फाइल किए जाने और उसके अंकन को संपरिवर्तन के सबूत का बाध्यकर और अनिवार्य तरीका नहीं बनाया जाना चाहिए, किन्तु इसे केवल वैकल्पिक बनाया जाना चाहिए जिससे कि संपरिवर्तित व्यक्ति अन्य विश्वसनीय दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में संपरिवर्तन/पुनर्संपरिवर्तन के तथ्य को सिद्ध करने हेतु दस्तावेजी सबूत रखने में समर्थ हो सके। तथापि, जैसा पहले कहा गया है, संपरिवर्तित व्यक्तियों द्वारा की गई घोषणा और पुष्टिकरण को प्रमाणित करने वाले ऐसे दस्तावेजी सबूत को निश्चायक सबूत नहीं माना जाना चाहिए। न्यायालय को संपरिवर्तन की स्वैच्छिक प्रकृति और अभिकथित संपरिवर्तित व्यक्ति के पश्चात्वर्ती आचरण जैसे अन्य सुसंगत प्रश्नों पर पर जब कभी विवाद होता है, विचार करने से वर्जित नहीं किया जा सकता है। अतः यह दोहराया जाता है कि आक्षेप में किए गए अंकित घोषणा को न्यायालय में संपरिवर्तन सिद्ध करने हेतु एकमात्र मानदण्ड नहीं माना जा सकता है यद्यपि निष्कर्ष

निकालते समय न्यायालय द्वारा इसे सम्यक् महत्व दिया जाना चाहिए ।

14. आयोग एक और पहलू का उल्लेख करना चाहता है । विवाह के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण के संबंध में, उच्चतम न्यायालय ने सीमा (श्रीमती) बनाम अश्विनी कुमार, (2006) 2 एस. सी. सी. 578 वाले मामले में राज्य सरकारों को कतिपय निदेश/सुझाव दिए । तथापि, यह प्रतीत नहीं होता कि राज्यों ने इस संबंध में कोई ठोस उपाय किए हैं । 211वीं रिपोर्ट में, विधि आयोग ने इस हद तक सिफारिश की है कि विवाह और विवाह विच्छेद के रजिस्ट्रीकरण न कराए जाने को अपराध माना जाए और दूसरा, कोई न्यायिक अनुतोष प्रदान न किया जाए यदि संबद्ध विवाह या विवाह विच्छेद को प्रस्तावित अधिनियम के अधीन सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया गया है । इस समय, विधि आयोग दूरगामी प्रभावों वाले उन सुझावों पर अपनी टिप्पणी नहीं देना चाहता क्योंकि इस समय आयोग को संपरिवर्तन के बारे में विचार करना है । यदि उच्चतम न्यायालय के निदेशों या विधि आयोग की सिफारिशों के अनुसार विवाह के रजिस्ट्रीकरण को बाध्यकर बनाया जाता है तो निश्चित ही इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि दूसरे धर्म में संपरिवर्तन के रजिस्ट्रीकरण को भी अनिवार्य बनाया जाए । ऐसा संपरिवर्तन जो किसी विशिष्ट औपचारिकता या धार्मिक रिवाज से हीन है, को उस विवाह के ही धरातल पर नहीं रखा जा सकता जिसकी विधि में मान्यता पारम्परिक रिवाजों या अनुष्ठानों के संपन्न होने के पश्चात् ही दी जाती है । इसके अतिरिक्त, वह पृष्ठभूमि जिसमें समाज के हित में विवाह के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण को आवश्यक समझा गया था, सभी दृष्टिकोणों से धार्मिक संपरिवर्तनों को लागू नहीं हो सकता है । हो सकता है कि जब

विवाह और विवाह-विच्छेद का अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण यथार्थ रूप में आ जाए और विवाह के रजिस्ट्रीकरण के निदेशों को लागू करने के लिए यथोचित तंत्र गठित कर लिया जाए तो संपरिवर्तन के अंकन/रजिस्ट्रीकरण के प्रश्न पर भी विचार किया जा सकता है। इस सन्निधि पर आयोग 211वीं रिपोर्ट के आधार पर संपरिवर्तनों के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण की स्कीम विवक्षित करने की सिफारिश करने का प्रस्ताव नहीं करता जबकि किसी राज्य में ऐसी कोई विधि नहीं है।

प्राप्त अभ्यावेदन/विचार और उस पर चर्चा

15. आयोग की सिफारिशें विरचित कर रिपोर्ट को समाप्त करने के पूर्व हम केरल ला एकेडमी, ला कालेज, त्रिवेन्द्रम, माननीय आर्च बिशप ऑफ भोपाल, कैथोलिक चर्च बाडी आफ मध्य प्रदेश और म.प्र. राज्य के कतिपय अन्य ईसाई संगठनों/व्यक्तियों द्वारा उत्तर में व्यक्त किए गए विचारों पर चर्चा करना चाहते हैं।

15.1 केरल ला एकेडमी के छात्रों और संकाय ने गहन चर्चा के पश्चात् “स्वैच्छिक धार्मिक संपरिवर्तन को प्रभावी बनाने के लिए कानूनी रिक्ति” शीर्षक के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत की। केरल ला एकेडमी की रिपोर्ट ने धार्मिक संपरिवर्तन को प्रभावी बनाने के लिए गैर-बोझिल विधायी प्रक्रिया विहित करने की आवश्यकता पर बल दिया है। यह इंगित किया गया है कि घोषणा को कानून में संपरिवर्तन के प्रभावी साधन के रूप में मान्यता प्रदान किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यह इंगित किया गया है कि संपरिवर्तन को प्रभावी बनाने हेतु संपरिवर्तन अनुष्ठानों की व्याप्ति और परिधि को स्पष्टतः विधि द्वारा परिभाषित किया जाना चाहिए। उनके

अनुसार, विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का अभाव धार्मिक संपरिवर्तन के क्षेत्र में विधिक रिक्ति पैदा करता है जो अन्तःकरण की स्वतंत्रता के संवैधानिक प्रत्याभूति के अनुरूप नहीं है ।

15.2 हमने पहले ही ऐसे कुछ पहलुओं का उल्लेख किया है । आयोग यह दोहराना चाहता है कि घोषणा के पुष्टिकरण को स्वयं संपरिवर्तन के सबूत के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और दूसरा, संपरिवर्तन के प्रयोजन के लिए किए जाने वाले धर्मानुष्ठानों और/या औपचारिकताओं के ब्यौरे या इसी रीति जिसमें विधि द्वारा संपरिवर्तन किसी न्यायालय में साबित किया जाए, विधान के माध्यम से विहित किया जाना बहुत अनुचित होगा । अस्पष्ट आदेश से बचना चाहिए । इसके अतिरिक्त पूरी समस्या को इस दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए कि क्या संपरिवर्तन संद्भावपूर्ण या यथार्थ था । विहित समारोह के पालन या संपरिवर्तन की घोषणा अभिकथित संपरिवर्तन को पवित्रता प्रदान नहीं कर सकता यदि संपरिवर्तन अन्यथा एक कल्पनात्मक प्रयोग या अन्तरस्थ हेतु को प्राप्त करने के बहाने या बल या प्रलोभन के परिणामस्वरूप किया गया है । ऐसा दृष्टिकोण अपना कर किसी भी प्रकार से अन्तःकरण की स्वतंत्रता का अतिलंघन नहीं होता है । अतः आयोग का यह मत है कि कतिपय रिवाजों/धर्मानुष्ठानों के पालन के सबूत या घोषणा के फाइल किए जाने को संपरिवर्तन के सार को ध्यान में रखते हुए संपरिवर्तन के निश्चयक सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता । किन्तु जैसाकि ऊपर कहा गया है घोषणा के पश्चात् पुष्टि संपरिवर्तन के समर्थन में एक महत्वपूर्ण साक्ष्य का उद्देश्य पूरा करता है ।

15.3 माननीय आर्च बिशप ऑफ भोपाल और मध्य प्रदेश के ईसाई

संगठनों द्वारा भेजे गए उत्तरों (जो लगभग एकमान हैं) पर विचार करते हुए अभ्यावेदनों का संक्षिप्तांश इस प्रकार है :-

बल या प्रलोभन द्वारा संपरिवर्तन प्रभावी बनाने के अभिकथन पर ईसाईयों के विरुद्ध मामले दर्ज किए गए हैं और रूढ़िवादी संगठन प्रार्थना बैठकों में हस्तक्षेप भी कर रहे हैं ।

धार्मिक संपरिवर्तनों और पुनर्संपरिवर्तनों के विषय पर उचित मार्गदर्शन विरोधों से बचने में सहायता प्रदान करेगा । विधि इस प्रकार होनी चाहिए जो व्यक्ति के अंतःकरण का सम्मान करती हो । जब धर्म का परिवर्तन ईश्वर में उसके विश्वास पर आधारित किसी व्यक्ति के अंतःकरण के विकल्प पर है तो विधि उसके धार्मिक परिवर्तन को जिला मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुज्ञा अभिप्राप्त करने पर बल नहीं दे सकता । संपरिवर्तन के पश्चात् ही सरकार के संबद्ध अधिकारी को सूचना भेजना समुचित होगा ।

15.4 उपरोक्त निर्दिष्ट कुछ बिन्दु मध्य प्रदेश विधानमंडल द्वारा अधिनियमित धर्म की स्वतंत्रता अधिनियम के कतिपय उपबंधों और उक्त अधिनियम के अधीन पुलिस द्वारा अभिकथित निरंकुश कार्यवाही और ईसाईयों के विरुद्ध कतिपय व्यक्ति समूहों के विधि विहीन कार्यों के विरुद्ध भी विधिक विधिमान्यता के संबंध में है । ये शिकायतें विधि आयोग द्वारा नहीं देखी जा सकती क्योंकि यह विचारार्थ प्रस्तुत विषय की व्याप्ति के भीतर नहीं है । ये उक्त अधिनियमिति के उपबंधों की सांविधानिक विधिमान्यता या विधि लागू करने में विरुपण या कतिपय व्यक्तियों के अभिकथित विधिविहीन कार्य से संबंधित व्यापक मुद्दे पैदा करते हैं । ये आयोग की रिपोर्ट के क्षेत्र के भीतर नहीं आते ।

15.5 अन्य उठाए गए मुद्दों अर्थात् संपरिवर्तन/पुनर्संपरिवर्तन के विषय पर उचित मार्गदर्शक सिद्धांत उपलब्ध कराने के बारे में इस पहलू पर पहले ही पूर्व पैराग्राफों में विचार किया गया है ।

सिफारिशें :-

16. अतः, विधि आयोग निम्नलिखित सिफारिशें करने का प्रस्ताव करता है :-

1. संपरिवर्तन की तारीख के पश्चात् एक माह के भीतर संपरिवर्तित व्यक्ति यदि वह चयन करता है/चयन करती है, संबद्ध क्षेत्र के विवाह रजिस्ट्रीकरण भारसाधक अधिकारी को घोषणा भेज सकता है ।
2. रजिस्टरकर्ता अधिकारी पुष्टि की तारीख तक कार्यालय के सूचना पट्ट पर घोषणा की प्रति प्रदर्शित करेगा ।
3. उक्त घोषणा में अपेक्षित ब्यौरे अर्थात् संपरिवर्तित व्यक्ति का विवरण जैसे जन्म तिथि, स्थायी पता और निवास का वर्तमान पता, पिता/पति का नाम, वह धर्म जिसका संपरिवर्तित व्यक्ति मूलतः सदस्य था और वह धर्म जिसमें वह संपरिवर्तित हुआ, संपरिवर्तन की तारीख और स्थान तथा संपरिवर्तन के लिए अपनाई गई प्रक्रिया की प्रकृति होगा ।
4. घोषणा भेजने/फाइल करने की तारीख से 21 दिनों के भीतर संपरिवर्तित व्यक्ति घोषणा की अन्तर्वस्तु की पुष्टि करने और अपनी पहचान सिद्ध करने के लिए रजिस्टरकर्ता अधिकारी के समक्ष उपस्थित हो सकता है ।
5. रजिस्टरकर्ता अधिकारी इस प्रयोजन के लिए बनाए गए रजिस्टर में

घोषणा और पुष्टिकरण के तथ्य को अभिलिखित करेगा । यदि कोई आपत्ति अधिसूचित की जाती है तो वह मात्र इसे अर्थात् आक्षेपकर्ता का नाम और विशिष्टियां तथा आक्षेप की प्रकृति अभिलिखित करेगा ।

6. घोषणा, पुष्टि और रजिस्टर के उद्धरण की प्रमाणित प्रतियां उस पक्षकार को, जिसने घोषणा की है या प्राधिकृत विधिक प्रतिनिधि को अनुरोध पर दी जाएंगी ।

17. अब यह प्रश्न उठता है कि उपरोक्त सिफारिशों को कैसे लागू किया जाए । यह स्पष्ट किया जाता है जिस किसी राज्य में धर्म की स्वतंत्रता अधिनियम जैसी संपरिवर्तित करने वाली विधि है, को उपरोक्त सिफारिशें लागू नहीं होंगी । तब प्रश्न यह है कि क्या अन्य राज्यों में उक्त सिफारिशों को लागू करने के लिए संसद द्वारा विधि का अधिनियमित किया जाना आवश्यक है । आयोग यह भी सोचता है कि संबद्ध स्वीय विधियों का संशोधन या पृथक् अधिनियमिति इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह कि विधि के विद्यमान उपबंधों के प्रतिकूल नहीं है और न ही यह किसी व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता या आस्था का किसी तरह से उल्लंघन करता है मात्र इस सिफारिश को प्रभावी बनाने के लिए अपेक्षित नहीं है । संपरिवर्तन/पुनर्संपरिवर्तन विषयक मामले स्वीय विधियों द्वारा शासित है जिसके संबंध में संसद् को विधियां बनाने की शक्ति है । केन्द्रीय सरकार संघ राज्यक्षेत्रों को समुचित निर्देश जारी करने के लिए अनुच्छेद 73 के अधीन अपनी कार्यपालिक शक्ति का प्रयोग कर सकती है । इसी प्रकार की संसूचना उपरोक्त उपवर्णित सिफारिशों को प्रभावी बनाने के लिए राज्यों (जहां संपरिवर्तन को साबित करने वाली कोई विधि नहीं है) केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों को भेजी जा सकती है । सम्बद्ध सरकारें रजिस्ट्रीकरण अधिकारियों को आवश्यक आदेश जारी करेंगी । यह प्रशासनिक तौर पर

संघ राज्य क्षेत्रों की सरकारों और राज्य सरकारों द्वारा किया जा सकता है ।

ह/-

(डा. न्यायमूर्ति पी. वी. रेड्डी)

अध्यक्ष

ह/-

(न्यायमूर्ति शिव कुमार शर्मा)

सदस्य

ह/-

(अमरजीत सिंह)

सदस्य

ह/-

(डा. ब्रह्म अग्रवाल)

सदस्य-सचिव